21वीं शती का हिन्दी साहित्य

नये आयाम

• डॉ. मुमताज़ बी.एम.

Scanned with CamScanner

प्रकाशक
विनय प्रकाशन
3A/128, हंसपुरम्
कानपुर–208021
सम्पर्क : 0512-2626241, 09415731903
vinayprakashankanpur@gmail.com
Website : www.vinayprakashan.com

ISBN : 978-81-89187-85-9

© संपादक

प्रथम संस्करण : 2019

मूल्य : 750.00 रुपये

शब्द साज :
विष्णु ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक :
पूजा प्रिण्टर्स, कानपुर

21We Sati Ka Hindi Sahitya : Naye Aayam

Edited By : Mumtaz B. M.

Price : Rs. Seven Hundred Fifty Only.

Scanned with CamScanner

12. मानसिक अंतर द्वंद्व से चयन तक का सफर तय करती स्त्री ('तत–सम' के संदर्भ में) 65 – 69
डॉ. पुष्पलता अग्रवाल

13. शिकंजे का दर्द : आत्मकथा में दलित नारी संघर्ष 70 – 72
वड्डी जगदीश

14. प्रवासी हिन्दी साहित्य में स्त्री कथाकारों की मानवीय चेतना 73 – 75
रचना शर्मा

15. आदिवासी साहित्य : अवधारणा और इतिहास 76 – 85
गंगा सहाय मीणा

16. हाशिए का समाज और आदिवासी लेखन 86 – 88
रंजना भारती

17. आदिवासी विमर्श 89 – 94
मोहन सिंह

18. 21 वीं शती के चर्चित विमर्श : आदिवासी विमर्श 95 – 98
नेहाल बहन आर. पटेल

19. 'आदिवासी स्त्री' और निर्मला पुतुल की कविताएँ 99 – 106
डॉ0 किरण शर्मा

20. 'जंगल पहाड के पाठ' में आदिवासी विमर्श 107 – 115
संतोष नागरे

21. 21वीं सदी में राजस्थान में आदिवासी जनजातियों का भविष्य : शिक्षा एवं आरक्षण के संदर्भ में एक विचार 116 – 120
शिवकरण निमल

22. सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना का संरक्षण और सुदृढ़ीकरण'' 121 – 126
डॉ0 बृजेश कुमार गुप्ता ''मेवादेव''

Scanned with CamScanner

20

'जंगल पहाड के पाठ' में आदिवासी विमर्श

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति के बढते हस्तक्षेप ने आदिवासियों के जीवन को तहस–नहस कर दिया। विस्थापन से उपजे अस्तित्व संकट ने ही आदिवासी विमर्श को जन्म दिया। आदिवासी विमर्श को लेकर काव्य सृजन करनेवाले कवियों में निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, महादेव टोप्पो, अनुज लुगुन, ग्रेस कुजूर, हरिराम मीणा, वांहरु सोनवणे आदि का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आदिवासियों की शोषण मुक्ति के लिए आवाज उठाई।

झारखंड के आदिवासी समाज जीवन को केंद्र में रखकर सृजन करनेवाले कवियों में महादेव टोप्पो शीर्शस्थ रचनाकार हैं। आपके द्वारा सन 1980 से 2014 के बीच आदिवासियों के जीवन को लेकर लिखी गयी चयनित 44 कविताओं को 'जंगल पहाड के पाठ' कविता – संग्रह में समाविष्ट किया गया है। यह कविता– संग्रह अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली से सन 2017 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत रचना आदिवासियों के दुख दर्द की संवाहक है। उपभोक्तावादी संस्कृति की विनाश लीला से जल, जमीन, जंगल, आदिवासियों के अस्तित्व तथा मानवता को बचाए रखने की बेचैनी तथा जद्दोजहद महादेव टोप्पो की इन कविताओं में स्पष्ट देखी जा सकती है। "यह कविता–संग्रह आदिवासी दुनिया के संघर्ष, जद्दोजहद, आक्रोश, पीडा, प्रतिरोध के अतिरिक्त आशाओं, आकॉक्षाओं, सपनों से न केवल परिचित कराता है बल्कि आदिवासी– जीवन और झारखंडी–परिवेश से जुडे अनदेखे कई मुद्दों, प्रश्नों की स्थानीयता को, वैश्विक– संदर्भों से भी जोडकर एक नया आयाम देता है। 'जंगल पहाड के पाठ' संग्रह की अधिकांश कविताएँ जहॉ एक ओर विकास, पूँजीवाद, विस्तारवाद, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, अंधराष्ट्रवाद, सामंतवाद, श्रेष्ठतावाद, नस्लवाद की विद्रुपताएँ झेलते आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाशिक, राजनीतिक समस्याओं को लोकतंत्र के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने, परखने का प्रयास करती हैं, वहीं दूसरी ओर ये कविताएँ धरती, मनुष्य और मनुष्यता को बचाने लिए चिन्तित और बेचैन भी नजर आती है।"[1]

आदिवासी इस देश के मूल निवासी हैं। आदिवासी समाज सदियों से साहित्य क्षेत्र में हाशिये पर रखा गया। सभ्य, सुसंस्कृत वर्ग के रचनाकारों की

Scanned with CamScanner

कलम से यह समाज अछूता ही रहा। अब तक कविता गंगा–यमुना के किनारे टहलती रही या फिर मगध, इलाहाबाद, दिल्ली, बनारस, भोपाल, जयपुर, भोजपुर, अवध, ब्रज, मालवा की ही सैर करती रही। झारखंड के पहाड, कॅटिली झाडियों से वह हमेशा बचती ही रही। अतः महादेव टोप्पो अपने टूटे–फूटे शब्दों के सहारे उसे झारखंड के गॉव तक टहलाना चाहते हैं। 'कविता को झारखंड घुमाना चाहता हूँ'कविता में महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"इस कविता को मैं
चहता हूँ झारखंड के गॉवों तक टहलाना
टूटे–फूटे शब्दों में
कविताएँ इसलिए लिखता हूँ।" [2]

आदिवासियों के बारे में साहित्यकारों का दृष्टिकोण एकांगी रहा है। आदिवासियों को जंगली, वनवासी, अनुसूचित जनजाति, दलित, नीग्रो, अश्वेत कहकर देश तथा विदेशों में अपमानित किया जाता है। आदिवासियों के मानवाधिकार को नकारनेवाली व्यवस्था के पास कलम, तिजोरी, सत्ता, कानून, अखबार, पुलिस, सेना आदि की असीमित ताकद है। जिसका विरोध करने की हिम्मत न होने से आदिवासी समाज सदियों से उनके शोषण को चुपचाप सहता आ रहा है। महादेव टोप्पो इस शोषणकारी व्यवस्था में नश्ट हो रही मुनश्यता को देखकर चिंतित है। मनुष्यता को बचाए रखने की कवि की जद्दोजहद 'पहाड की नजरों से' कविता में स्पश्ट दिखाई देती है। महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"कहो दलित, नीग्रे, अश्वेत या कुछ और में चुप मान लूँगा
इस देश में नहीं, पूरे विश्व में
तुम्हारे पास कलम है, तिजोरी है, सत्ता है, कानून है, अखबार है
सबसे बडी बात कि तुम्हारे पास पुलिस है, सेना है
आखिर क्या नहीं है तुम्हारे पास ?
और ऐसे में मेरी हिम्मत कहॉ कि कुछ कहूँ ?
तुम चाहे जो कुछ कहो मेरे बारे में मान लूँगा माई–बाप!
सिवा इसके कि कहो तुम–स्वयं को मनुष्य।" [3]

आधुनिकता ने मनुष्य को स्वयंकेंद्रित, संवेदनाहीन तथा जड बना दिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति में आज का मनुष्य मूल्यहीन होता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति जिद्दी बेशर्म थेथर के पौधे की तरह शहर से लेकर जंगल तक फल–फूल रही है। आधुनिकता के रंग में रंगकर बेरंग होती जा रही संस्कृति पर –'बदल डाला है खुद को कुछ ऐसा' कविता में प्रहार करते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

Scanned with CamScanner

"तुम्हारी आधुनिकता ने/ किन्तु सिखा दिया है
अब जीना कुछ इस तरीके से
उखाडों कहीं से/रोपो भले कहीं नहीं
फेंक दो चाहे सडक किनारे
शहर किनारे / जंगल किनारे
या राजधानी की गन्दी बस्तियों में
अब उग आते हैं सखुए की तरह तो नहीं
जिद्दी, बेशर्म थेथर पौधे की तरह
कहीं भी, किसी भी मौसम में।" [4]

आधुनिक शहरी सभ्य आदमी बहुरुपिये की तरह चालाक होने से सीधा–सरल आदिवासी उसे समझने में धोखा खा जाता है। पल–पल रुप बदलने वाले शहरी सभ्य जानवरों से लडना खूँख्वार जंगली जानवरों से लडने से भी कठिन है। शहरी सभ्य वर्ग के नकली चेहरे की असली कहानी को बयान करते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"जंगलों में, पहाडों में, ऑधी से, भीषण बारिष से
या खूँख्वार जंगली जानवरों से लड लेना आसान है
बीहड में भटक कर पा लेना कोई और राह, आसान है
लेकिन आसान नहीं है / शहर में सभ्य आदमी से निपट लेना।"[5]

'तुम्हारी मुख्य–धारा में' कविता में महादेव टोप्पो ने सभ्य सुसंस्कृत वर्ग की पोल खोली है। आदिवासियों को गॅवार, पिछडे, अज्ञानी, जंगली, बूरे कहनेवाले मुख्यधारा के शिष्ट समाज की तुलना में वे कहीं अधिक अच्छे हैं। कवि को मुख्य–धारा के द्वार पर सभ्यता का नकाब ओढे कई असभ्य, अमानवीय और ढेर सारे क्रूर चेहरे दिखाई दिये। कवि को मुख्य–धारा में पवित्रता, सहदयता, शिश्टाचार, सहयोग, स्वच्छता, सच्चाई, ईमान, करुणा, दया तथा एकजुटता का अभाव दिखाई दिया। इसलिए कवि महादेव टोप्पो मुख्यधारा से छिटककर दूर होना चाहते हैं। महादेव टोप्पो मुख्यधारा के शिष्ट समाज के चेहरे को बेनकाब करते हुए कहते हैं,–

"मुझे दिखते हैं / मुख्य–धारा के द्वार पर
कई असभ्य, अमानवीय और ढेरों चेहरे कूर
फिर भी कर साहस, समेट हिम्मत
बह चुका हूँ दूर तक बहुत / मुख्य– धारा में तुम्हारे
और देख रहा हूँ अब / अक्षर–दूरबीन के सहारे
न तो वहॉ पवित्रता है / न सहृदयता
न शिष्टाचार / न सहयोग / न स्वच्छता

Scanned with CamScanner

न सच्चाई / न ईमान / न करुणा
न दया / न एकजुटता।"[6]

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति में पैसा ही मूल्य बन जाने से मूल्य–व्यवस्था चरमरा रही है। 'त्रासदी' एक आशा' कविता के माध्यम से महादेव टोप्पो ने आधुनिकता और प्राचीनता के दो पाटों के बीच पीसते आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण किया है। असभ्य से सभ्य बनने की कोशिश में जंगल से शहर की ओर कदम बढाता आदिवासी समाज न सभ्य बन पा रहा है, न अपना आदिवासीपन और पुरखों की विरासत बचा पा रहा है। जीवन की इस अंधी दौड में वह महज एक पुर्जा बनकर रह गया है। 'धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का' जैसी अवस्था में आदिवासी समाज जीने के लिए विवश है। उसकी इस त्रासदी को बयान करते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"मैं एक जंगली, एक आदिवासी / महसूस करता हूँ घूटन
कि असभ्य से सभ्य बनने की कोशिश में
जीवन की अन्धी दौड में / एक पुर्जा बनता जा रहा हूँ
न बन पा रहा हूँ अमीर और न सभ्य
और न बचा पा रहा हूँ अपना आदिवासीपन
न पुरखों की विरासत।"[7]

साम्राज्यवादी – पूँजीवादी राजनीतिक व्यवस्था की मिलिभगत ने प्राकृतिक संसाधनों की लूट के लिए जंगल में घुसपैठ करते हुए जंगल के दावेदारों को जंगल से बाहर खदेडना शुरु किया। आदिवासी इसका विरोध न करे इसलिए विकास के नाम पर उन्हें गुमराह किया गया। विकास के नाम पर में बढते हस्तक्षेप से जंगल उजड रहे हैं। जंगल को उजाडकर वे आबाद हो रहे हैं। 'वे और हम' कविता में इसकी पोल खोलते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"वे कहते हैं / सहानुभूति दिखाते
राष्ट्र के विकास की प्रकिया में / जंगल के लोग
पहाड के लोग/ उजड रहे हैं / यह नहीं बताते कि
इस प्रक्रिया में / वे आबाद हो रहे हैं।"[8]

आदिवासियों के प्रति सहानुभूति रखनेवाली राजनीतिक पार्टियों की कथनी और करनी में विरोधाभास पाया जाता है। आदिवासियों को विकास के नाम पर विस्थापित कर उनका विनाश किया जा रहा है। गालियों और गोलियों की मार से आदिवासी समाज के विकास का कार्य प्रगति–पथ पर है। इस असंतुलित तथा विनाशकारी विकास के विरोध में उडीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, झारखंड, छत्तिसगढ आदि राज्यों में आदिवासी समाज सडकों पर उतर रहा हैं। मेधा पाटकर, रमणिका गुप्ता, अरुधन्ती राय, सुंदरलाल बहुगुणा, ब्रम्हदेव जैसे धरती के

Scanned with CamScanner

रक्षकों के नेतृत्व में धरती की नग्नता तथा उसको बंजर बनने से बचाने हेतु आंदोलन किये जा रहे हैं। 'प्रश्नों के तहखाने में' कविता में महादेव टोप्पो असंतुलित तथा विनाशकारी विकास के विरोध में आवाज उठाते हुए कहते हैं,–

"हमारी भलाई में जुडी होने का करती है दावा
पार्टियॉ हो दक्षिण, वाम या मध्यमार्गी
सदा करती है हमारे हित की बात
हम जादूगोडा में गल रहे हों / नर्मदा में डूब रहे हो
उडीसा में चाहे भूखे मर रहे हों
या देश में कहीं गालियॉ या गोलियॉ खा कर मर रहे हों
या दामोदर का पी रहे हों गन्दा पानी / बताया जाता है
हमारे लिए कहीं–न–कहीं विकास का कार्य, है प्रगति पर।"[9]

आजादी के सत्तर साल बाद भी इस देश का मूलनिवासी रोटी, कपडा, मकान, शिक्षा तथा आरोग्य जैसी सुविधाओं से भी वंचित है। धर्म के नाम पर उसके हाथों में कभी क्रॉस, कभी त्रिशूल तो कभी तलवार देकर उसे धर्म की भूलभूलैया में भटकाया जा रहा है। तो कभी उसकी 'घर वापसी' का किया जाता है नाटक। डैम, नहर, सडक, कारखाने, खदान के नाम पर उसे अपनी पुरखों की विरासत से रायफल की नोंक पर हटाया जा रहा है। हल, बैल, खेत–खलिहान छोड वह सरकारी दफ्तर में काम करने के लिए विवश है। सभी ओर से उसे उजाडकर, उसका सम्मान छिनकर उसकी योग्यता पर सवाल उठनेवाले शोशकों को बेनकाब करते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"कभी फिर 'घर वापसी' का खेला जाता है नाटक
कोलकाता के कला मंदिर में
सम्मान के साथ चाहता हूँ जीना यदि
अपने गॉव में, तब भी
डैम, नहर, सडक, कारखाने, खदान के नाम
हटाया जाता हूँ जबरन रायफल की नोंक पर
हल, बैल, खेत, खलिहान छोड
यदि सरकारी दफ्तरों में होता हूँ संग तुम्हारे
योग्यता के सवाल पर परखा जाता हूँ।"[10]

सदियों से शोषणकारी व्यवस्था ने आदिवासी समाज को गूँगा बनाकर उसे हिनता की दृष्टि से देखा। सरकारी शब्दकोश में आदिवासी कमजोर वर्ग के आदमी है। दफ्तर के अपने सहकर्मियों की नजर में मन्दबुध्दि, पियक्कड तथा रिजर्व कोटे के आदमी है। स्कूल–कॉलेज के छात्र पुलिस की निगाहों में मोटर साइकिल लुटेरे, बैंक डकैत तथा झारखंडी उग्रवादी है। संविधान की भाशा में वे अनुसुचित जाति

Scanned with CamScanner

या जनजाति है। मनु की भाशा में शूद्र, कम्युनिस्टों की भाशा में शोषित, ईसाइयों की नजरों में अपवित्र लोग, भाजपाइयों की भाशा में पिछडे हिंदू है। महादेव टोप्पो 'मैं पूछता हूँ' कविता में सवाल करते हैं कि आखिर इस देश के प्रजातंत्र में हम क्या है ? महादेव टोप्पो आदिवासियों की दी गयी विभिन्न उपमाओं के विरुद्ध अपनी सदियों की चुप्पी को तोडते हुए कहते हैं,–

"संविधान की भाषा में हम
अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति हैं
मनु की भाषा में शूद्र/कम्युनिस्टों की भाशा में शोषित
ईसाइयों की नजरों में अपवित्र लोग
भाजपाइयों की भाशा में पिछडे हिंदू / मैं पूछता हूँ तुम सबसे
आखिर इस देश में, इस प्रजातंत्र में
हम क्या है ?/हम क्या है ?"[11]

आजादी के सत्तर साल बाद भी आदिवासी को हम आदमी मानने को तैयार नहीं है। 'तुमसे, आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूँगा!' कविता में महादेव टोप्पो ने शोषणकारी व्यवस्था की पोल खोली है। एकलव्य का अँगूठा काटने के तौर–तरीकों में परिवर्तन तो हुआ है, लेकिन एकलव्य की पीडा आज भी वही है। आदिवासियों को हेय दृष्टि से देखने की सवर्णों की मनःस्थिति आज भी वहीं है। देश की उन्नति तथा विकास का पाठ पढानेवाले सदियों से श्रद्धा के नाम पर एकलव्य का अँगूठा काटते आये हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तथा पूर्वी घाट से पश्चिमी घाट तक आदिवासियों के साथ अमानवीय व्यवहार करनेवाली शोषणकारी व्यवस्था की पोल खोलते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

"जानता हूँ, अँगूठा काटने के तौर–तरीके
और रंग–ढंग में आ गया है भारी परिवर्तन
अँगूठा कटेगा हमारा और हमें पता भी नहीं चलेगा
क्योंकि हमें देखने की/मनःस्थिति तुम्हारी है वही
देखने का नजरिया है वही/जैसा था कभी।" [12]

सवर्णों की श्रेष्ठतावादी मनःस्थिति तथा आदिवासियों की गुलाम मनःस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। 'घोडा बने रहने की आदत तुम्हारी' कविता में महादेव टोप्पो ने आदिवासियों की गुलामी में जीवन जीने की आदत पर प्रहार किया है। जब भी कोई आंदोलन चरम शीखर पर पहुँच जाता है, तभी अपने चन्द स्वार्थ की खातिर हमारी एकता भंग की जाती है। एकता तथा संगठन के अभाव में आदिवासी समाज दिशाहीन अवस्था में भटक रहा है। यह आदत इक्कीसवीं सदी में भी न छूट जाने से हमारी तरक्की रुकी हुई है। गुलाम मानसिकता से बाहर निकलने पर जोर देते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

Scanned with CamScanner

"जब आता है अवसर/आंदोलन का शिखर पर होने का
तुम्हारी हैसियत रह जाती है/रथ के घोडे की तरह
तब तुम न सारथी रह पाते हो/न बन पाते हो रथ के सवार
पिछले आठ हजार वर्षों से/आदमी से घोडा बनने की
आदत तुम्हारी / इक्कीसवीं सदी में भी नहीं छूटी
खाक करोगे तुम तरक्की !"[13]

पेरवा घाघ झारखंड के खूँटी के निकट का जलप्रपात है, जहाँ कभी कबुतरों का वास था। कबूतर शांति के प्रतीक हैं। प्राकृतिक सौंदर्य तथा शांति स्थल के रुप में पेरवा घाघ को जाना जाता थां। पर्यटकों की यहाँ भीड लगी रहती थी। प्राकृतिक संसाधनों के अमर्याद दोहन से कबूतर, कोयल अन्य पंछी अपना यह स्थान छोडकर दूर चले गये। अब यहाँ पंछियों का कलरव नहीं, गोलियों की आवाजे सुनाई देती है। विकास के नाम पर आदिवासियों को घर टूटने तथा छूटने का डर हमेशा बना रहता है। वर्दीधारी रायफलें यहाँ की अशांतता तथा अराजकता को बयान करती है। विश्व को शांति का संदेश देनेवाले पेरवा घाघ के कबूतरों का उड जाना देश– विदेशों के आदिवासियों की व्यथा– कथा की ओर स्पष्ट संकेत देता है। वैश्वीकरण की इस लूट संस्कृति से पेरवा घाघ में अशांतता तथा अराजकता का साम्राज्य फैल रहा है। महादेव टोप्पो 'पेरवा घाघ के कबूतर–2' कविता में कहतें हैं,–

"जिस दिन से पेरवा गये यहाँ से
इस इलाके में/कोयल, कारो के किनारे
मँडराने लगा अजीब–सा आतंक
हमेशा घर टूटने, छूटने का डर सताने लगा
विकास के मंदिर बनने के प्रस्ताव से
कभी वर्दीधारी रायफलें घूमने लगी यहाँ
कभी चल गयी फिर/हमारे बच्चों पर गोली तपकरा में
ऐसे किसी प्रस्ताव से/अब लगता है डर
पेरवा बन गये शान्ति के प्रतीक
मगर बना गये हमें अशान्त।"[14]

अशांतता तथा अराजकता के इस बदलते माहौल में कवि अपनी आस्था एवं जिजीविषा को बचाए रखने के लिए प्रयासरत है। 'नौकरी पर काला–हाँडिर रोड जाते बेटे के लिए' कविता में कवि अपने जीवनानुभवों की पूँजी अपने बेटे को सुपुर्द कर रहा है। जीवन संघर्ष का ही दुसरा नाम है। अतः जीवन में सफलता के लिए बाहय संघर्ष के साथ आंतरिक संघर्ष भी महत्वपूर्ण है। जीवन में आस्था तथा जिजीविशा के लिए कवि महादेव टोप्पो अपने पुत्र को जंगल–पहाड के

Scanned with CamScanner

कठिन रास्ते याद रखने की नसीहत देते हैं तथा मॉ की नाराजगी, झिडकियॉ, प्रोत्साहन, संदिप तथा विनायक भैया के आत्मसंघर्ष की ओर उंगली निर्देश भी करते हैं। नदियों तथा झरनों से आगे बढने की रफ्तार, एकलव्य की तरह बेहतर कर दिखाने की इच्छाशक्ति के बल पर 'ही आदिवासी' जीवन को त्रासदी से बचाया जा सकता है। जीवन की हर चुनौती को सहर्श स्वीकारने में ही जीवन को सार्थकता है। महादेव टोप्पो आनेवाली पीढियों के लिए संघर्षरत रहने का संदेश देते हुए कहते हैं,–

"यह शक्ति हर हालत में अपने तन, मन और दिल में भरना
और लगातार भरना/बेटे, कठिन इस डगर पर चलकर ही
आगे होना है भविष्य तुम्हारा तय
इसलिए तरह–तरह के रास्तों पर चलकर
इस प्रकार के संतुलन बनाये रखने की
योग्यता तुम्हें हासिल करनी होगी
वास्तविक जीवन की यही है परीक्षा कडी।
लेकिन, आधुनिक जीवन में जंगल, पहाड के आदमी की
है सबसे बडी त्रासदी यही
फिर भी इस चुनौती को स्वीकारना, जीवन की है रीत यही।"[15]

निष्कर्ष :

महादेव टोप्पो समकालीन हिंदी कविता के शीर्शस्थ रचनाकार हैं। आपकी कविताओं के केंद्र में झारखंड का आदिवासी समाज है। आदिवासियों का अस्तित्व जंगल पर निर्भर होने से वे उसकी सुरक्षा के लिए जल, जमीन और जंगल का अमर्याद दोहन करनेवाली शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। महादेव टोप्पो जहॉ एक ओर वैश्वीकरण की उपभोक्तावादी संस्कृति की मार से आहत आदिवासियों की अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति, संस्कृति, मानवता, तथा विश्वशांति को बचाए रखने के लिए संकल्पबद्ध दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर 'जंगल पहाड के पाठ' के कवि महादेव टोप्पो आदिवासी समाज जीवन के साथ अभिन्न रुप से जुडे हुए रचनाकार हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड के पाठ, फ्लैप
2. वही, वही, पृ. 33
3. वही, वही, पृ. 47
4. वही, वही, पृ. 35
5. वही, वही, पृ. 83
6. वही, वही, पृ. 69–70

Scanned with CamScanner

7. वही, वही, पृ. 16
8. वही, वही, पृ. 62–63
9. वही, वही, पृ. 25
10. वही, वही, पृ. 16–17
11. वही, वही, पृ. 90
12. वही, वही, पृ. 75
13. वही, वही, पृ. 61
14. वही, वही, पृ. 58
15. वही, वही, पृ. 84

संतोष नागरे
सहा.प्रा.हिन्दी विभाग
र.भ. अट्टल महाविद्यालय,
गेवराई जि.बीड (महाराष्ट्र)

Scanned with CamScanner